[2020] 3 एस.सी.आर. 798

मैसर्स धर्मरत्नाकर राय बहादुर अर्कॉट नारायणस्वामी
मुदलियार छत्रम और अन्य श्रेणियां और अन्य ।
बनाम
मैसर्स भास्कर राजू और ब्रदर्स एंड अन्य ।

(सिविल अपील संख्या 1599/2021)
14 फरवरी, 2020

[एस. ए. बोबडे, मुख्य न्यायाधीश, बी. आर. गवई और सूर्य कांत, न्यायमूर्ति]

कर्नाटक स्टांप अधिनियम, 1957: धारा 33 और 34 - यदि कोई पट्टा विलेख न तो पंजीकृत है और न ही अधिनियम के तहत आवश्यक रूप से पर्याप्त रूप से मुहर लगाई गई है, तो अदालत ऐसे पट्टा विलेख या मध्यस्थता खंड पर कार्रवाई नहीं कर सकती है। यदि लिखत पर ठीक से मुहर नहीं लगी है, तो इसे जब्त कर लिया जाना चाहिए और स्टाम्प अधिनियम-मध्यस्थता में निर्दिष्ट तरीके से निपटा जाना चाहिए।

समानताः समान राहत, हकदारी- प्रत्यर्थियों का स्व-विरोधाभासी रुख – अभिनिर्धारित: *किसी भी राहत के हकदार नहीं।*

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित : 1. मान लीजिए, दोनों पट्टा विलेख न तो पंजीकृत हैं और न ही कर्नाटक स्टाम्प अधिनियम, 1957 के तहत आवश्यक रूप से पर्याप्त रूप से मुद्रांकित हैं। यह सत्य है कि कर्नाटक उच्च न्यायालय के पंजीयक (न्यायिक) ने उच्च न्यायालय को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें कहा गया था कि पक्षकारों के बीच निष्पादित/प्रविष्ट वर्ष 1997 का दस्तावेज एक पट्टा विलेख था न कि पट्टा देने का समझौता और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 घाटे स्टांप शुल्क और जुर्माने का भुगतान करने के लिए प्रत्यर्थी सं 1 और 2 ने उक्त निर्देशों का पालन नहीं किया और घाटे वाले स्टांप शुल्क और जुर्माने का भुगतान नहीं किया। एस.एम.एस.टी. एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड के मामले में विहित विधि को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय ने दिनांक 12.3.1997 के उक्त पट्टा पर भरोसा करने में त्रुटि की। [अनुच्छेद 18, 20]

2. यहां तक कि समानता पर भी प्रत्यर्थी किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं। पट्टा विलेख के बाद निष्पादित किया गया था हालांकि प्रत्यर्थी सं 1 और 2 ने 1998 में निष्पादित किरायेदारों के साथ कुछ निपटान विलेखों को रिकॉर्ड पर रखा, एक गंजे बयान को छोड़कर, कि किरायेदारों में से अंतिम को वर्ष 2010 में बेदखल कर दिया गया था, कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों द्वारा प्रत्यर्थियों के विरुद्ध निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर करने के पश्चात् ही, जिसका प्रत्यर्थियों द्वारा 18.6.2011 को लिखित कथन दाखिल करके विधिवत विरोध किया गया था, प्रत्यर्थियों ने लगभग 2 वर्ष और 3 माह की अवधि के लिए वाद कार्यवाही में भाग लेने के पश्चात् माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन दायर किया। यदि प्रत्यर्थियों की खोज में, दिनांक 12.03.1997 का पट्टा विलेख

वैध और वैध दस्तावेज था और उस पर विवाद को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट करने के लिए उस पर भरोसा किया जा सकता था, तो धारा 36 को ध्यान में रखते हुए, कुछ भी उन्हें सिटी सिविल कोर्ट के समक्ष लम्बित वाद में मध्यस्थता अधिनियम की धारा 8 के तहत आवेदन दायर करने से रोक नहीं सकता था। जल्द से जल्द उपलब्ध अवसर। प्रत्यर्थी सं 1 और 2 स्व-विरोधाभासी रुख अपना रहे हैं। बैंगलोर में सिटी सिविल कोर्ट के समक्ष लिखित बयान में, उन्होंने स्वीकार किया है कि दस्तावेज़ एक पट्टा विलेख था, जबकि उच्च न्यायालय के समक्ष उन्होंने एक रुख अपनाया है, कि दस्तावेज़ किरायेदारों को बेदखल करके संपत्ति को खाली करने के बाद संपत्ति को विकसित करने के लिए एक समझौता था। यह रुख पट्टा विलेख में व्यक्त शर्तों के बिल्कुल विपरीत है। पट्टा विलेख की अवधि पट्टा विलेख पर हस्ताक्षर करने की तारीख से 38 वर्ष होनी थी। दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख के खंडों के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि पट्टेदार ने अनुसूची 'ख' संपत्ति का खाली कब्जा प्राप्त करने और अनधिकृत अधिभोगियों को बाहर निकालकर खाली कब्जा सुरक्षित करने की सारी जिम्मेदारी ली थी। प्रत्यर्थियों द्वारा भवन योजनाओं को मंजूरी देने की जिम्मेदारी भी ली गई थी। इससे यह भी पता चलेगा कि पक्षकारों के बीच इस बात पर भी सहमति बनी थी कि किसी भी किरायेदार के न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्थिति में, मुकदमे की ऐसी अवधि किसी भी तरह से 38 वर्षों के पट्टा विलेख की सहमत अवधि को प्रभावित नहीं करेगी। मामले के उस दृष्टिकोण में, प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत किया गया कि सभी किरायेदारों को बेदखल करने और भवन योजनाओं को मंजूरी दिए जाने के बाद ही समझौता पंजीकृत किया जाना था, दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख में किसी भी शर्त द्वारा समर्थित नहीं है। [अनुच्छेद 21-25]

एसएमएस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड **(2011) 14 एससीसी 66 - पर भरोसा किया गया।**

<u>निर्णय विधि संदर्भ</u>

(2011) 14 एससीसी 66 **पर भरोसा किया गया ।**
अनुच्छेद 19

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार**:** सिविल अपील सं 1599/2020।

सिविल विविध याचिका संख्या **167/2013** में बैंगलोर में कर्नाटक उच्च न्यायालय के दिनांक **01.12.2014** के निर्णय और आदेश से।

निखिल नय्यर**,** सीनियर अधिवक्ता**,** सुश्री प्रिथा श्रीकुमार**,** सुश्री वसुधा शर्मा और दिव्यांशु राय**,** अधिवक्ता अपीलार्थियों के लिए।

बालाजी श्रीनिवासन**,** सुश्री पल्लवी सेनगुप्ता**,** अरिंदम घोष**,** सुश्री श्रुति गोपाल**,** सुश्री गरिमा जैन**,** ऐश्वर्या चौधरी**,** सुश्री लक्ष्मी राव**,** आकाश चटर्जी और सुश्री अनिनी देबबर्मन**,** प्रार्थियो के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निम्नलिखित निर्णय दिया गयाः

निर्णय

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. पक्षकारों की विद्वान सलाह सुनी।

3. वर्तमान अपील के माध्यम से, अपीलार्थी सिविल विविध याचिका सं. 2013 के 167 में बैंगलोर में कर्नाटक उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित 01.12.2014 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हैं, जिसके द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति एल. श्रीनिवास रेड्डी को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसके पश्चात् "मध्यस्थता अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया गया है) के अनुसार मध्यस्थता केंद्र, बैंगलोर में मध्यस्थता कार्यवाही का संचालन करने के लिए मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया था।

4. संक्षेप में, वर्तमान अपील को उदय देने वाले तथ्य इस प्रकार हैं:

5. अपीलार्थी संख्या 1 एक पंजीकृत धर्मार्थ न्यास है। शेष अपीलार्थी अपीलार्थी संख्या 1 - न्यास के न्यासी हैं। अपीलार्थी संख्या 1 - न्यास अपने स्वामित्व वाली भूमि को विकसित करना चाहता है और कार्यालय परिसर के साथ एक बहुउद्देश्यीय सामुदायिक भवन का निर्माण करना चाहता है।

6. इस प्रकार, प्रत्यर्थी संख्या.1 ने उक्त संपत्ति को विकसित करने और भूमि के उक्त टुकड़े पर मौजूद न्यास के संस्थापक की समाधि का नवीनीकरण करने की पेशकश की। अपीलकर्ता संख्या 1 - न्यास और प्रत्यर्थि नंबर.1 के बीच वार्ता अभिनिर्धारित हुई थी।

7. वार्ताओं के परिणामस्वरूप, अपीलार्थी संख्या 1 - न्यास और प्रत्यर्थी संख्या 1 - पट्टेदार के बीच 38 वर्षों की अवधि के लिए पट्टा विलेख निष्पादित किया गया। उक्त पट्टा विलेख के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या.1 पट्टेदार को ब्याज मुक्त जमा के रूप में रु 55,00,000/- (केवल पचास लाख रुपये) की राशि का भुगतान करना आवश्यक था, जिसे 38 वर्षों की अवधि के अंत में वापस किया जाना था, यदि पार्टियों के बीच पट्टा नहीं बढ़ाया गया था। उक्त पट्टा विलेख की शर्तों के अनुसार, एक निश्चित मासिक जमीन का किराया भी प्रत्यर्थी सं.1 - पट्टेदार द्वारा अपीलार्थी सं.1 को भुगतान किया जाना आवश्यक था। उक्त पट्टा विलेख के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 1 - पट्टेदार को एक हजार व्यक्तियों की न्यूनतम बैठने की क्षमता के साथ एक बहुउद्देश्यीय सभागार का निर्माण करना था। उक्त सभागार का उपयोग विवाह आदि के लिए किया जाना था, साथ में भोजन कक्ष, रसोईघर, अतिथि कक्ष आदि के लिए उपयोग किया जाना था। प्रतिवादी संख्या.1 - पट्टेदार ने अनुसूची 'ख' में उल्लिखित संपत्ति का खाली कब्जा प्राप्त करने का भी बीड़ा उठाया था, बशर्ते कि पट्टेदार द्वारा पट्टेदार के मौजूदा किरायेदारों को बाहर निकालने के लिए उसे सभी सहयोग दिए जा रहे हों। उक्त पट्टा विलेख अपीलार्थी सं. 1 - न्यास के संकल्प दिनांक 30.04.1996. के आधार पर 31.05.1996 को निष्पादित किया गया था।

8. अपीलार्थी सं.1 और प्रत्यर्थी सं.1 के बीच एक पश्चात्वर्ती पट्टा विलेख दिनांक 12.3.1997 को निष्पादित किया गया। दिनांक 12.3.1997 के पश्चातवर्ती/नए पट्टा विलेख के अधिकांश नियम और शर्तें उन नियमों और शर्तों के समान हैं जो दिनांक 31.05.1996 के प्रथम पट्टा विलेख में पाई गई हैं।

9. ऐसा प्रतीत होता है कि 1997 से 2000 के बीच की अवधि के दौरान उक्त परियोजना के विकास में ज्यादा प्रगति नहीं हुई थी। यह आगे प्रतीत होता है कि वर्ष 2008 में अपीलार्थियों और प्रत्यर्थियों के बीच कुछ पुनः बातचीत हुई थी। हालाँकि, वही अमल में लाने में विफल रहा। यह अपीलकर्ताओं का मामला है, कि सिक्युरिटी डिपॉजिट की ओर शुरुआती भुगतान के **25** लाख रुपए की रकम को छोड़कर, सिक्युरिटी डिपॉज़िट की ओर शेष रकम का प्रत्यर्थियों द्वारा भुगतान नहीं किया गया था। अपीलार्थियों का यह भी मामला था कि प्रत्यर्थी न्यासियों में से एक के साथ मिलकर न्यास संपत्ति के कब्जे में हस्तक्षेप करने की कोशिश कर रहे थे। इस पृष्ठभूमि में, अपीलार्थी-न्यास ने मूल वाद ओ.एस. संख्या 2010 का 8952 के रूप में बैंगलोर सिटी सिविल कोर्ट के समक्ष में दायर किया। उक्त वाद में, अपीलार्थियों की ओर से यह भी प्रत्यर्थी किया गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 1 - पट्टेदार ने न्यास के संस्थापक की समाधि को भी अपवित्र किया था और उसके कुछ हिस्से को नुकसान पहुंचाया था। यह आगे तर्क दिया गया कि, प्रत्यर्थी संख्या 1 - पट्टेदार, प्रत्यर्थी संख्या 4 के साथ मिलीभुगत में, अवैध रूप से निष्पादित एक नया पट्टा विलेख प्राप्त करने की कोशिश कर रहा था। उक्त सूट में निम्नलिखित प्रार्थनाएँ की गई:

> "**क**. 1 से 3 प्रतिवादियों, उनके अभिकर्ताओं, सेवकों को अनुसूची ए की संपत्ति पर प्रथम वादी न्यास के शांतिपूर्ण कब्जे और आनंद में हस्तक्षेप करने से रोकने वाले स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री।
>
> **ख**. 1 से 4 प्रतिवादियों को अनुसूची-ए संपत्ति या उसके किसी भाग से संबंधित किसी पट्टा विलेख या अन्य दस्तावेज लेन-देन में प्रवेश करने, निष्पादित करने या पंजीकृत करने से रोकने वाला स्थायी निषेधाज्ञा।
>
> **ग**. मामले की लागत और ऐसी अन्य राहत/राहते देने की डिक्री जो अदालत परिस्थितियों में उचित समझे।

10. बैंगलोर के सिटी सिविल कोर्ट ने उक्त मुकदमे में अनुसूची संपत्ति पर यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देते हुए एक अंतरिम आदेश दिया। इस मुकदमे का प्रत्यर्थी संख्या **1** और **2** द्वारा लिखित बयान दाखिल करके विरोध किया गया।

11. प्रत्यर्थी सं 1 और 2 ने लगभग दो वर्ष और तीन महीने की अवधि के लिए वाद कार्यवाही में भाग लेने के बाद 06.09.2013 को अपीलार्थियों को एक नोटिस जारी किया, जिससे दिनांक 31.05.1996 और 12.03.1997 के पट्टा विलेख में मध्यस्थता खंड का आह्वान किया गया। 11.10.2013 को प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के तहत एक

याचिका दायर की। नोटिस दिए जाने पर, अपीलार्थियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की और 02.06.2014 को आपत्तियों का अपना बयान दायर किया, जिससे विभिन्न आधारों पर याचिका को खारिज करने का अनुरोध किया गया।

12. चूंकि यह अपीलार्थियों का मूल तर्क था कि दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख पर अपर्याप्त रूप से मुहर लगाई जा रही है, इसलिए उसे कर्नाटक स्टाम्प अधिनियम, 1957 की धारा 33 के तहत अनिवार्य रूप से जब्त किया जाना था और जब तक उचित शुल्क और जुर्माना का भुगतान नहीं किया जाता, तब तक इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता था, इसलिए कर्नाटक उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने मामले को उक्त मुद्दे के निर्धारण के लिए रजिस्ट्रार (न्यायिक) को भेज दिया। कर्नाटक उच्च न्यायालय के पंजीयक (न्यायिक) ने दिनांक 25.9.2014 की एक विस्तृत रिपोर्ट द्वारा अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत दस्तावेज पट्टा विलेख था और पट्टा देने का करार नहीं था और इसलिए प्रत्यर्थी सं.1 और 2 घाटे स्टांप शुल्क और रुपये के जुर्माने का भुगतान करने के लिए रु 1,01,56,388/- (एक करोड़ एक लाख छप्पन हजार तीन सौ अट्ठासी रुपये मात्र)।

13. प्रत्यर्थी सं 1 और 2 ने रजिस्ट्रार की रिपोर्ट पर अपनी आपत्तियां दायर कीं (न्यायिक). कर्नाटक के उच्च न्यायालय ने पंजीयक (न्यायिक) की रिपोर्ट पर विचार किए बिना, प्रत्यर्थी सं.1 और 2 और मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन शक्ति का उपयोग करते हुए, अपीलार्थियों और प्रत्यर्थियों के बीच विवाद का निर्णय करने के लिए एक मध्यस्थ नियुक्त किया गया। इससे व्यथित होकर, अपीलार्थी इस न्यायालय के समक्ष हैं।

14. हमने अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री निखिल नय्यर और प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बालाजी श्रीनिवासन को सुना है।

15. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री निखिल नय्यर प्रस्तुत करते हैं कि यद्यपि दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख का खंड 36 पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् का उपबंध करता है, क्योंकि उक्त पट्टा विलेख पर अपर्याप्त रूप से मुहर लगी थी, उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता था। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं 1 और 2 दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख को आगे बढ़ाने के लिए कोई कदम उठाने में विफल रहे थे और लगभग 16 वर्षों की अवधि के बाद विलम्बित रूप से और केवल जब अपीलार्थियों द्वारा दायर वाद अंतिम चरणों में था, मध्यस्थता खंड का आह्वान किया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि वास्तव में, अपीलार्थियों द्वारा दायर वाद पहले से ही एक निर्णय और डिक्री दिनांक 02.03.2015 द्वारा निर्धारित किया गया है।

16. प्रत्यर्थियों की ओर से पेश हुए वरिष्ठ वकील श्री बालाजी श्रीनिवासन ने इसके विपरीत प्रस्तुत किया कि समझौता प्रभावी था, संपत्ति को पट्टे पर देने का एक समझौता, जिस पर सभी किरायेदारों को बेदखल करने और निर्माण शुरू करने की अनुमति निगम द्वारा दिए जाने के बाद ही मुहर लगाने की आवश्यकता थी। यह प्रस्तुत

किया जाता है कि प्रत्यर्थी, हर समय, विभिन्न किरायेदारों के साथ बातचीत करने की कोशिश कर रहे थे और इस तरह, उच्च न्यायालय का यह मानना सही था कि समझौता किरायेदारों को बेदखल करके संपत्ति को खाली करने के तुरंत बाद संपत्ति को विकसित करने के लिए था।

17. कर्नाटक स्टाम्प अधिनियम, 1957 की धारा 33 और 34 को पुनः प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, जो निम्नानुसार हैं:

"33. **लिखतों का परीक्षण और अभिग्रहण**- (1) प्रत्येक व्यक्ति जिसे विधि द्वारा या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है, और सार्वजनिक पद का प्रभारी प्रत्येक व्यक्ति, पुलिस के एक अधिकारी को छोड़कर, जिसके समक्ष उसकी राय में प्रभार्य कोई लिखत, कर्तव्य के साथ, प्रस्तुत की जाती है या अपने कार्यों के निष्पादन में आती है, यदि उसे यह प्रतीत होता है कि ऐसे लिखत पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई है, तो उसे अभिग्रहण करेगा।

(2) उस प्रयोजन के लिए प्रत्येक ऐसा व्यक्ति यह पता लगाने के लिए कि क्या उस पर कर्नाटक राज्य में प्रवृत्त विधि द्वारा अपेक्षित मूल्य और विवरण की मुहर लगी है जब ऐसे लिखत को निष्पादित किया गया था या पहली बार निष्पादित किया गया था, इस प्रकार प्रभार्य और इस प्रकार प्रस्तुत या उसके समक्ष आने वाले प्रत्येक लिखत की जांच करेगाः

बशर्ते कि –

(क) इसमें अंतर्विष्ट किसी बात के लिए यह नहीं समझा जाएगा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अध्याय 12 या अध्याय 16 के अधीन कार्यवाही के सिवाय किसी कार्यवाही के दौरान उसके समक्ष आने वाले किसी लिखत की, यदि वह ऐसा करना उचित नहीं समझता है, किसी दंड न्यायालय के मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश से परीक्षा करने या अभिगृहीत करने की अपेक्षा की जाएगी;

(ख) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में, इस धारा के अधीन किसी लिखत की परीक्षा करने और अभिगृहीत करने का कर्तव्य ऐसे अधिकारी को प्रत्यायोजित किया जा सकता है जिसे न्यायालय इस निमित्त नियुक्त करता है।

(3) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, संदेह के मामलों में, सरकार निर्धारित कर सकती है।

(क) किन पदों को सार्वजनिक पद माना जाएगा; और

(ख) जिन्हें सार्वजनिक पदों के प्रभारी व्यक्ति माना जाएगा।

34. **जिन लिखतो पर विधिवत मुहर नहीं लगी है, वे साक्ष्य आदि में अस्वीकार्य हैं** - कर्तव्य के साथ प्रभार्य किसी भी दस्तावेज को किसी भी उद्देश्य के लिए किसी भी व्यक्ति द्वारा साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा, जिसे कानून द्वारा या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है, या उस

पर कार्रवाई की जाएगी, ऐसे व्यक्ति या किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा पंजीकृत या प्रमाणित किया जाएगा, जब तक कि ऐसे दस्तावेज पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई है:
बशर्ते कि –

(क) ऐसा कोई लिखत, जो केवल पन्द्रह नए पैसे से अनधिक शुल्क के साथ प्रभार्य लिखत या फसल का बंधक नहीं है, धारा 3 के खंड (क) और (ख) के अधीन पच्चीस नए पैसे के शुल्क के साथ प्रभार्य अनुसूची का अनुच्छेद 35(क), सभी न्यायोचित अपवादों के अधीन रहते हुए, उस शुल्क के, जिसके साथ वह प्रभार्य है, या अपर्याप्त रूप से मुद्रांकित लिखत की दशा में या ऐसे शुल्क की पूर्ति के लिए अपेक्षित रकम के, पांच रुपये के जुर्माने के साथ, या जब उचित शुल्क या उसके कम भाग की रकम का दस गुना पाँच रुपये से अधिक हो, ऐसे शुल्क या भाग के दस गुना के बराबर राशि के भुगतान पर साक्ष्य में सम्मिलित किया जाएगा;

(ख) जहां दो या अधिक पत्रों वाले पत्राचार द्वारा किसी प्रकार का अनुबंध या समझौता किया जाता है और पत्रों में से किसी एक पर उचित मुहर लगी होती है, तो अनुबंध या समझौते पर विधिवत मुहर लगी हुई मानी जाएगी;
(ग) इसमें अंतर्विष्ट कोई बात दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अध्याय 12 या अध्याय XXXVI के अधीन कार्यवाही के अतिरिक्त दंड न्यायालय में किसी कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में किसी लिखत को सम्मिलित करने से नहीं रोकेगी;
(घ) जब ऐसा लिखत सरकार द्वारा या उसकी ओर से निष्पादित किया गया है या जहां उस पर धारा 32 या इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध द्वारा उपबंधित उपायुक्त का प्रमाणपत्र है और ऐसे प्रमाणपत्र को अध्याय 6 के उपबंधों द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संशोधित नहीं किया गया है, तो इसमें निहित कोई बात किसी न्यायालय में किसी लिखत के प्रवेश को नहीं रोकेगी।

18. मान लीजिए, दोनों पट्टा विलेख न तो पंजीकृत हैं और न ही कर्नाटक स्टाम्प अधिनियम, 1957 के तहत आवश्यक रूप से पर्याप्त रूप से मुद्रांकित हैं। यह सत्य है कि कर्नाटक उच्च न्यायालय के पंजीयक (न्यायिक) ने उच्च न्यायालय को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें कहा गया था कि 1997 का निष्पादित/पक्षकारों के बीच दर्ज किया गया दस्तावेज एक पट्टा विलेख था न कि पट्टा देने का समझौता और एक आदेश पारित किया जिसमें प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 घाटे स्टांप शुल्क और रुपये के जुर्माने का भुगतान करने के लिए रु 1,01,56,388/- (केवल एक करोड़ एक लाख छप्पन हजार तीन सौ अस्सी रुपये) यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने उक्त निर्देशों का अनुपालन नहीं किया है और घाटे वाले स्टांप शुल्क और जुर्माने का भुगतान नहीं किया है। इस पृष्ठभूमि में, विचारार्थ प्रश्न यह होगा कि क्या दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख के खंड 36 पर उसमें अंतर्विष्ट माध्यस्थम खंड को प्रवर्तित करने के लिए कार्रवाई की जा सकती है।

19. मुद्दा अब रेज़ इंटीग्रा नहीं है। **एस. एम. एस. टी. एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड** [1] के मामले में इस न्यायालय को उन उपबंधों पर विचार करने का अवसर मिला था जो कर्नाटक स्टाम्प अधिनियम**, 1957** के उपबंधों के समरूप हैं। प्रासंगिक परिच्छेद इस प्रकार हैं**:**

> **"17.** क्या होगा यदि कोई मध्यस्थता समझौता एक अपंजीकृत **(**लेकिन अनिवार्य रूप से पंजीकृत**)** लिखत में निहित है जिस पर विधिवत मुहर नहीं लगी है**?** इसका उत्तर खोजने के लिए स्टाम्प अधिनियम**,** 1899 **(**संक्षेप में "स्टाम्प अधिनियम"**)** के प्रावधानों का उल्लेख करना आवश्यक हो सकता है। स्टाम्प अधिनियम की धारा 33 लिखतो की जांच और ज़ब्त करने से संबंधित है। इसके प्रासंगिक भाग को नीचे निकाला गया हैः
>
> **'33. लिखतो की जाँच और ज़ब्त करना - (1)** प्रत्येक व्यक्ति जिसे कानून द्वारा या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है**,** और सार्वजनिक पद का प्रभारी प्रत्येक व्यक्ति**,** पुलिस के एक अधिकारी को छोड़कर**,** जिसके समक्ष कोई प्रभार्य दस्तावेज**,** उसकी राय में**,** कर्तव्य के साथ**,** अपने कार्यों के निष्पादन में प्रस्तुत किया जाता है या आता है**,** यदि उसे यह प्रतीत होता है कि ऐसे दस्तावेज पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई है**,** तो उसे जब्त कर लिया जाएगा।
> (2) उस प्रयोजन के लिए प्रत्येक ऐसा व्यक्ति यह पता लगाने के लिए कि क्या उस पर उस समय भारत में प्रवृत्त विधि द्वारा अपेक्षित मूल्य और विवरण की मुहर लगी है जब उस लिखत को निष्पादित किया गया था या पहली बार निष्पादित किया गया था**,** इस प्रकार प्रभार्य और इस प्रकार प्रस्तुत या उसके समक्ष आने वाले प्रत्येक लिखत की जांच करेगाः
>
> **'18.** स्टांप अधिनियम की धारा 35 में यह प्रावधान है कि जिन उपकरणों पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई है**,** वे साक्ष्य में अस्वीकार्य हैं और उन पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। उक्त खंड का प्रासंगिक भाग नीचे निकाला गया है।
>
> **'35. जिन लिखतो पर विधिवत मुहर नहीं लगी है, वे साक्ष्य आदि में अस्वीकार्य हैं** - कर्तव्य के साथ प्रभार्य किसी भी दस्तावेज को किसी भी उद्देश्य के लिए किसी भी व्यक्ति द्वारा साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा**,** जिसे कानून द्वारा या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है**,** या उस पर कार्रवाई की जाएगी**,** ऐसे व्यक्ति या किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा पंजीकृत या प्रमाणित किया जाएगा**,** जब तक कि ऐसे दस्तावेज पर विधिवत मुहर नहीं लगाई गई हैः
> बशर्ते कि –
>
> **(**ए**)** ऐसा कोई लिखत उस शुल्क के संदाय पर**,** जिसके साथ वह प्रभार्य है**,** या अपर्याप्त मुद्रांकित लिखत की दशा में**,** ऐसे शुल्क की पूर्ति के लिए अपेक्षित रकम के संदाय पर**,** पांच

रुपये के जुर्माने के साथ, या जब उचित शुल्क या उसके कम भाग की रकम का दस गुना पाँच रुपये से अधिक हो, तो ऐसे शुल्क या भाग के दस गुना के बराबर राशि के साक्ष्य में सम्मिलित किया जाएगा।

19. स्टांप अधिनियम की धारा 35 को ध्यान में रखते हुए, जब तक कि स्टांप शुल्क और लिखत के संबंध में देय दंड का भुगतान नहीं किया जाता है, तब तक न्यायालय लिखत पर कार्रवाई नहीं कर सकता है, जिसका अर्थ है कि वह मध्यस्थता समझौते पर भी कार्य नहीं कर सकता है जो लिखत का हिस्सा है। स्टांप अधिनियम की धारा 35 एक अपंजीकृत दस्तावेज के संबंध में पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 से अलग और अलग है। स्टांप अधिनियम की धारा 35 में पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 जैसा कोई प्रावधान नहीं है जो संपार्श्विक लेन-देन स्थापित करने के लिए साधन का उपयोग करने में सक्षम बनाता है।

20. गुवाहाटी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति की योजना, 1996 के लिए अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन के साथ मूल मध्यस्थता समझौता या उसकी विधिवत प्रमाणित प्रति की आवश्यकता होती है। वास्तव में, ऐसी आवश्यकता लगभग सभी उच्च न्यायालयों की योजना/नियमों में पाई जाती है। यदि जो प्रस्तुत किया जाता है वह मध्यस्थता खंड वाले समझौते/अनुबंध/साधन की प्रमाणित प्रति है, तो उसे मूल पर भुगतान किए गए स्टांप शुल्क का खुलासा करना चाहिए। धारा 33 प्रत्येक न्यायालय पर यह कर्तव्य डालती है कि वह व्यक्ति जिसके पास विधि द्वारा साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है **(**साथ ही प्रत्येक मध्यस्थ जो पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार रखने वाला व्यक्ति है**)** जिसके समक्ष कर्तव्य के साथ प्रभार्य एक अपंजीकृत लिखत प्रस्तुत की जाती है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि उस पर विधिवत मुहर लगी है या नहीं, लिखत की जांच करे। यदि अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि उपकरण पर विधिवत मुहर नहीं लगी है, तो उसे दस्तावेज़ को जब्त करना होगा और स्टाम्प अधिनियम की धारा 38 के अनुसार इससे निपटना होगा।

21. इसलिए, जब किसी पट्टा विलेख या किसी अन्य लिखत पर मध्यस्थता समझौते का प्रतिवाद करने के लिए भरोसा किया जाता है, तो अदालत को शुरू में ही विचार करना चाहिए कि क्या उस ओर से कोई आपत्ति उठाई गई है या नहीं, क्या दस्तावेज़ पर ठीक से मुहर लगाई गई है। यदि यह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इस पर ठीक से मुहर नहीं लगी है, तो इसे जब्त कर लिया जाना चाहिए और स्टाम्प अधिनियम की धारा 38 में निर्दिष्ट तरीके से निपटा जाना चाहिए। न्यायालय ऐसे दस्तावेज या उसमें मध्यस्थता खंड पर कार्रवाई नहीं कर सकता है। लेकिन यदि घाटे के शुल्क और जुर्माने का भुगतान स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 या धारा 40 में निर्धारित तरीके से किया जाता है, तो दस्तावेज़ पर कार्रवाई की जा सकती है या सबूत में स्वीकार किया जा सकता है।

20. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में अभिनिर्धारित किया है कि जब किसी पट्टा विलेख या किसी अन्य लिखत पर मध्यस्थता करार के रूप में भरोसा किया जाता है, तो न्यायालय को आरंभ में विचार करना आवश्यक है कि क्या दस्तावेज पर ठीक से मुहर लगी है या नहीं। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब उस ओर से कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है, तब भी इस मुद्दे पर विचार करना न्यायालय का कर्तव्य है। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि लिखत पर ठीक से मुहर नहीं लगी है, तो इसे जब्त कर लिया जाना चाहिए और स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 38 में विनिर्दिष्ट रीति से निपटाया जाना चाहिए। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायालय ऐसे दस्तावेज़ या उसमें मध्यस्थता खंड पर कार्रवाई नहीं कर सकता है। तथापि, यदि घाटे के शुल्क और जुर्माने का भुगतान स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 या धारा 40 में निर्धारित तरीके से किया जाता है, तो दस्तावेज पर कार्रवाई की जा सकती है या साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आने वाले उपबंध कर्नाटक स्टाम्प अधिनियम, 1957 की धारा 33 और 34 के उपबंधों के अनुरूप हैं। मामले के इस दृष्टिकोण में, हमारा विचार है कि ***एसएमएस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड*** **(** पूर्वोक्त**)** के मामले में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए कि मध्यस्थता खंड वाले पट्टा विलेख, जिस पर विधिवत मुहर लगाने की आवश्यकता है, पर पर्याप्त रूप से मुहर नहीं लगाई गई थी और हालांकि रजिस्ट्रार **(**न्यायिक**)** ने प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 घाटे स्टांप शुल्क और रुपये के जुर्माने का भुगतान करने के लिए रु 1,01,56,388/- (एक करोड़ एक लाख छप्पन हजार तीन सौ अठासी रुपये केवल**)** प्रत्यर्थी ऐसा करने में विफल रहे, उच्च न्यायालय ने दिनांक 12.03.1997 के उक्त पट्टा पर भरोसा करने में त्रुटि की है।

21. यद्यपि अपीलार्थी केवल विधि के उपर्युक्त प्रश्न पर ही सफल होने के हकदार हैं, हम पाते हैं कि समता पर भी प्रत्यर्थी किसी राहत के हकदार नहीं हैं।

22. पट्टा विलेख के बाद वर्ष 1996-1997 में निष्पादित किया गया था, हालांकि प्रत्यर्थी सं 1 और 2 ने 1998 में निष्पादित किरायेदारों के साथ कुछ निपटान विलेखों को रिकॉर्ड पर रखा है, एक गंजे बयान को छोड़कर, कि अंतिम किरायेदारों को वर्ष 2010 में बेदखल कर दिया गया था, कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है, कि अपीलकर्ताओं द्वारा मुकदमा दायर करने के बाद ही प्रत्यर्थीयो के विरुद्ध निषेधाज्ञा जिसका विधिवत् विरोध किया गया प्रत्यर्थीयो ने 18.06.2011 को लिखित बयान दाखिल करके, प्रत्यर्थीयो को लगभग 2 वर्षों और 3 महीने की अवधि तक मुकदमे की कार्यवाही में भाग लेने के बाद, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11(6) के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष वर्तमान आवेदन दायर किया। आगे यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यदि अंदर प्रत्यर्थीयो का पीछा करते हुए, पट्टा विलेख दिनांक 12.03.1997 कानूनी था और वैध दस्तावेज़ और इसके खंड 36 के मद्देनजर विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए इस पर भरोसा किया जा सकता है, कुछ भी उन्हें इससे रोकता नहीं है के समक्ष मध्यस्थता अधिनियम की धारा 8 के तहत एक आवेदन दाखिल करना बेंगलुरु में सिटी सिविल कोर्ट, ओ.एस. संख्या 8952/2010 यथाशीघ्र अवसर उपलब्ध है. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं 1 और 2 आत्म-विरोधाभासी रुख अपना रहे हैं। बैंगलोर

में सिटी सिविल कोर्ट के समक्ष लिखित बयान में, उन्होंने स्वीकार किया है कि दस्तावेज़ एक पट्टा विलेख था, जबकि उच्च न्यायालय के समक्ष उन्होंने एक रुख अपनाया है, कि दस्तावेज़ किरायेदारों को बेदखल करके संपत्ति को खाली करने के बाद संपत्ति को विकसित करने के लिए एक समझौता था। यह रुख पट्टा विलेख में व्यक्त शर्तों के बिल्कुल विपरीत है। यह दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख के खंड 5 को संदर्भित करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार पढ़ता है:

"5. पट्टा की अवधि इस पट्टा विलेख पर हस्ताक्षर करने की तारीख से शुरू होकर 38 वर्ष होगी।

23. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि पट्टा विलेख की अवधि पट्टा विलेख पर हस्ताक्षर करने की तारीख से 38 वर्ष होनी थी।

24. दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख के खंडों के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि पट्टेदार ने अनुसूची 'ख' संपत्ति का खाली कब्जा प्राप्त करने और अनधिकृत अधिभोगियों को बाहर निकालकर खाली कब्जा सुरक्षित करने की सारी जिम्मेदारी ली थी। प्रत्यर्थीयो द्वारा भवन योजनाओं को मंजूरी देने की जिम्मेदारी भी ली गई थी। इससे यह भी पता चलेगा कि पक्षकारों के बीच इस बात पर भी सहमति बनी थी कि किसी भी किरायेदार के न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्थिति में, मुकदमे की ऐसी अवधि किसी भी तरह से 38 वर्षों के पट्टा विलेख की सहमत अवधि को प्रभावित नहीं करेगी।

25. इस मामले को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थियों के विद्वत वकील, श्री बालाजी श्रीनिवासन द्वारा प्रस्तुत किया गया कि सभी किरायेदारों को बेदखल करने के बाद ही समझौता पंजीकृत किया जाना था और भवन योजनाओं को मंजूरी दी गई थी, दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख में किसी भी शर्त द्वारा समर्थित नहीं है।

26. मामले के उस दृष्टिकोण में, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने दिनांक 12.03.1997 के पट्टा विलेख पर भरोसा करने में पूरी तरह से गलती की है, जिस पर अपर्याप्त रूप से मुहर लगाई गई थी और रजिस्ट्रार **(**न्यायिक**)** की रिपोर्ट को दरकिनार कर दिया गया था, जब प्रत्यर्थी कर्नाटक उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार **(**न्यायिक**)** द्वारा निर्धारित अपर्याप्त स्टांप शुल्क और दंड का भुगतान करने में विफल रहे थे।

27. परिणामस्वरूप, अपील की अनुमति प्रदान की जाती है। 2013 के सीएमपी संख्या**.** 167 में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 01.12.2014 के विवादित निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया गया है। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत प्रत्यर्थियों द्वारा दायर याचिका/आवेदन को खारिज कर दिया जाता है।
लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

देविका गुजराल अपील की अनुमति दी गई।

1. (2011) 14 एससीसी 66

दिब्या कुमारी की देखरेख में, अधिवक्ता सरवजीत सिंह द्वारा अनुवादित।